

‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’ पुस्तक का अनुशीलन

प्रो. चंद्रकांत सिंह

प्रोफेसर, हिंदी विभाग

हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धौलाधार परिसर-01, धर्मशाला, जिला-काँगड़ा हिमाचल प्रदेश-176215

ईमेल- chandrakants166@hpcu.ac.in मोबाईल-9805792455

‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’ पुस्तक शत्रुघ्न प्रसाद जी द्वारा लिखित है। इस पुस्तक में लेखक ने मध्यकालीन समाज को सूक्ष्मतापूर्वक उभारा है। भारत का पूर्वमध्यकाल जहाँ सामाजिक-राजनीतिक रूप से विलक्षण है, वहीं दमन, अवमानना एवं पीड़ा की लम्बी कथा कहने वाला है। भारत का प्राचीनकाल कला, साहित्य एवं दर्शन की वैभव-कथा कहता है। इस युग में राजनयिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टिजनता का विकास हुआ किन्तु जैसे-जैसे इस्लाम का भारत में आगमन हुआ, क्रमिक रूप से भारतीय चेतना सिकुड़ती चली गयी। मुहम्मद बिन कासिम, चंगेजखां एवं तैमूर लंगके आक्रमणों ने भारतीय जनता को भीतर तक झुकझोर दिया। इनबाह्यआक्रमणों ने भारत की वैभव-कथा के चिह्नकोमिटाने के साथ गहरे असुरक्षा-बोध का भीनिर्माण किया, जिसमें भावी पीढ़ियाँ झुलसती रहीं। यह वह दौर है, जब इस्लाम पूरे वेग के साथ भारत में फैल रहा था और तलवार के बल पर हुकूमत एवं शरीयत की मनमानी व्याख्यादिखाई पड़ती है। ठीकउस वक्त जब इस्लाम सामाजिक-राजनीतिक रूप से वचस्व की मनमानीव्याख्या कर रहा था, भारत की सांस्कृतिक-धारा में अप्रत्याशितगिरावट दिखाई दे रही थी। दिल्ली सल्तनत के बाद मुगल सल्तनत की जो तवारीख लिखी गयी, वह दुःखदही नहीं क्षोभ-युक्त है। हालांकिआरम्भ से इल्बारी एवं तुर्कीआक्रमण के बाद भारतीय संस्कृति में गिरावट दिखती है किन्तु उत्तर मुगल काल में यह चरम पर पहुँच गयी। औरंगजेब जब सत्तानशीं हुआ, उसने स्वयं को जिंदा पीर कहकर इस्लाम की मनमानी व्याख्यापेशकी। इस तरह यह काल जहाँ हुकूमत एवं सत्ता की दृष्टि से एकांगी है, वहीं इस काल में सामाजिक अवनतिके चिह्न भी दिखाई देते हैं। उपन्यासकार के रूप में शत्रुघ्न प्रसाद जी ने उत्तर मुगल काल की जो तस्वीर पेश की है, वह भयावह है। अपनी औपन्यासिक कृति में उन्होंने भारतीय संस्कृति कायथार्थरूप प्रस्तुत किया है, जो हिन्दू जाति में गौरव का संचार करने वाला है। ध्यान देने योग्य बात है कि लगभग सभी इतिहासकारों ने मध्यकाल को कलात्मक दृष्टि से उन्नति का काल कहा है, किन्तुध्यातव्य है कि यहाँ भोग एवं विलासिता का अतिरेक है। जो भी बाह्य उपकरण एवं सजावटहै, कमोबेश सभी में आडम्बरयुक्त चमकहै। लेखक ने उपन्यास में इसे सुन्दर ढंग से रूपायित किया है। इस तरह यह औपन्यासिक कृति इतिहास की सुन्दर एवं सारगर्भित व्याख्या है। लेखक ने दाराशिकोह एवं औरंगजेब को आधार बनाकर भारतीयएवंइस्लामिकदर्शन के बीच सन्निहित अंतर को दिखाया है। मध्यकालीनसमय जब हुकूमत की सारी व्याख्या उलेमा करते थे और जनता हाशिए पर थी। उसे चित्रित करते हुए लेखक ने उन भारतीय चिंतकों को भी दिखाया है जिन्होंने अपने प्राणों को दांव पर लगाकर भारतीय चेतना की अभिरक्षा की। इस दृष्टि से यह कृति यथार्थ का प्रामाणिक पाठ कही जा सकती है जिसमें धर्म, दर्शन, राजनीति, संस्कृति सबका अंतर्भाव है। युद्ध के बाद जब दाराशिकोह को कैद कर हाथों में हथकड़ी डालकर जुलूस के साथघुमायाजाता है, उस दृश्य को पढ़कर पाठकगहरे नैराश्य से भरे उठता है। एक गहरे रूप में यह नैराश्य जरूरीथा; क्योंकि इसके बाद भारतीयों में उत्साह एवं आशा की किरणें दिखती हैं जो आत्मिक भराव पैदा करती हैं। पीड़ादायक अवस्थिति का बिंब प्रस्तुत करते हुए लेखक कहते हैं- “लाहौरी दरवाजे से होता हुआ जुलूस आ रहा था। आगे-आगे हथियार बंद सिपाहियों के साथ कुछ दरबारी थे। एक हथिनी पर एक पुराना हौदा बंधा हुआ था।

उसी हौदे में मैले कपड़ों में दाराशिकोह को बैठा दिया गया था। हाथों में हथकड़ी थी। जंग में हारे हुए दारा का सर झुका हुआ था। साथ में छोटा लड्डका सिपर शिकोह भी था। उसके चेहरे पर खौफ छाया हुआ था। आँखों से आँसू आ जाते और फिर सूख जाते थे।” प्रस्तुत पंक्तियाँ महज दारा की पराजय नहीं हैं बल्कि इन पंक्तियों में पराभूत भारतीय संस्कृति दिखती है। दाराशिकोह तो केवल बाहरी प्रतीक भर है। कहीं गहरे इन पंक्तियों में सहमी हुईमानवता है जिसका दर-दर तक कोई नाम तकलेने वाला नहीं। जोभी इस संस्कृति के पक्ष में मुहब्बत का पैगाम पढ़ेगा उसे बेशर्त कठिन सजा मिलेगी। इस तरह दाराशिकोह मुहब्बत एवं अमन के मसीहा के रूप में दिखता है, वहीं औरंगजेब सत्ता के नशे में डूबे हुए व्यक्ति के रूप में दिखाई देता है जिसके पास तंग दिल ज़ज्बात के सिवा कुछ शेषनहीं। औरंगजेब की विजय सत्ता के मद, अहंकारएवं आकांक्षा की विजय है जिसमें सभी डूबते-तिरते दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है कि दारा की शिकस्त के बाद जैसेन्याय, सद्भाव एवं खुशी क्षीण होती चली गयी। शत्रुघ्न प्रसाद की यह कृति मध्यकालीन आतंक को दिखाने वाली अनूठी रचना है, इसमेंउत्तर मुगलकालीन आधिपत्य तो दिखता ही है साथ ही भारत का आत्मविश्वास रह-रह कर छलकता है जिसे संतों, साहित्यिकों एवं चिंतकों ने पूरजोर ढंग से चित्रित किया। उत्तर मुगलकाल असुरक्षा का काल है जहाँ कुछ भी सुरक्षित नहीं। इतिहास साक्षी है कि दारा शिकोह की शिकस्त के बाद सब कुछ बदल गया। दाराशिकोह की बेटी, बादशाहशाहजहाँसब औरंगजेब की कैदगाह में डाल दिए गये। लेखक ने आलम आरा के आँसुओं एवं ज़ज्बातों को सूक्ष्मतापूर्वक दिखाया है। आलम आरा भावुकमिजाज की राजकुमारी हैं। लेखक ने प्रस्तुत कृति में उसकी संवेदना एवं भाव-चित्र को कुशलता के साथ उभारा है। लेखक यह भी दिखाते हैं कि उसका औरंगजेब की बेटी जेबुनिसा से गहरा अनुराग है। आगरा जाते हुए वह स्वयं को निस्सहायएवं एकाकी अनुभव करती है। लेखक ने बिछोह, पीड़ा एवं संत्रास से भरे हुए पल को चित्रित करते हुए लिखा है कि - “दाराशिकोह की बेटी आलमआरा को जब आगरे के किले में भेजने की तैयारी हो रही थी। उस समय औरंगजेब की बेटी जेबुनिसा उससे मिलने आती है। आलमआरा कहती है- “अब तो दुआओं के सहारे जीना है, जेबु !...अम्मीजान चली गयीं। अब्बा हज़ूर खून से लबरेज ताबत में बन्द कर दिये गये।...अब बाबा और फुफी को प्यार और बहन जेबुनिसा की मुहब्बत...जी लूंगी।...यह भी बादशाह-ए-गाजी की मर्जी पर मुनहसर है।” उपर्युक्त दृष्टांत अत्यंत मर्यान्तक है। यह वह क्षण है जब दाराशिकोह के शुभचिंतकों को चुन-चुन कर सलाखों के पीछे डालने की साजिश कार्य कर रही थी।

मध्यकाल की तवारीख में यह काल केवल झूठी विजय एवं श्रेष्ठता का काल भर नहीं है, बल्कि यहाँ काल विलासिता, भोग एवं अनैतिक विस्तार का काल है। औरंगजेब केवल सत्ता भर नहीं चाहता बल्कि वह दारा की पत्नी आदि को जबरन पाना चाहता है ताकि उसकी जीत की मुनादी होती रहे। वह उदयपुरी बेगम को वासना का शिकार बनाना चाहता है। उसकी मंशा है कि दारा की हर पसंदीदा चीज़ को अखितयार कर सके। उदयपुरी के ज़रिए लेखक ने अंधेरे में तड़पते हुए कोमल-हृदय को दिखाया है, जो बादशाह के खूंखार इरादों का प्रतिकार नहीं कर पाता। औरंगजेब काम-वासना का प्रतिरूप है, वह उदयपुरी को जीतकर एक अलग तवारीख लिखना चाहता है, यही नहीं अपहृत हिन्दू रानियों की

अस्मत् से भी खेलना चाहता है। उदयपुरी बेगम और असम की राजकुमारी जया की बातचीत में तनावपूर्ण स्थिति झलकती है। राजकुमारी जया और दाराशिकोह की पत्नी उदयपुरी बेगम की पीड़ा में समानुभूति है। दोनों अवश हैं, दोनों निराश्रित हैं। यहाँ एक सादृश्य-बोध है जो राजकुमारी और उदयपुरी के हृदय को जोड़ता है। उदयपुरी नहीं चाहती कि किसी भी नारी के साथ उत्पीड़न हो, हर कोई स्वतंत्र रहकर जीवन जी सके, यही उसकी इच्छा है। उदयपुरी एवं असम की राजकुमारी जया का संवाद अत्यंत मार्मिक है। यहाँ लेखक ने स्त्री-स्वातंत्र्य की भावना को स्त्रियों के माध्यम से दिखाया है। स्त्री कोई जर-खरीद गुलाम नहीं। उसकी अपनी निजता है जिसे कोई भी बादशाह बलात अधिकृत नहीं कर सकता। राजकुमारी जया कहती है- 'यदि प्रतिष्ठा के साथ जीना न हो तो प्रतिष्ठा के साथ मर जाना है।आप मुझ पर कृपा करें। मुझे बेटी मान लें।' जया के द्वारा सम्मान पाकर उदयपुरी भावुक हो जाती है, वह स्पष्ट कहती है- मरना नहीं, जया! बाइज्जत जीना। तुम बच जाओ तो मैं समझूंगी कि मैं खुद ही बच गयी। आज की रात... स्याह रात... बेचैन शाही महल... तुम्हें नई जिंदगी मिले।' इस तरह लेखक शत्रुघ्न प्रसाद ने मध्यकालीन साजिश के बीच इन स्त्रियों के माध्यम से स्त्री-चेतना की झलक प्रस्तुत करनी चाही है। लेखक ने प्रस्तुत कृति के द्वारा इतिहास की व्यवस्थित एवं मुकम्मल छवि पेश की है। यह इतिहास ख्यात तथ्य है कि औरंगजेब के साथ षडयन्त्रों में रोशन आरा बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है। लेखक ने रोशन आरा के व्यक्तित्व में दबी हुयी कुंठा एवं अधिकार-भावना को दिखाया है। वह राजनीतिक रूप से चतुर एवं अवसरवादी है। उसे पता है कि औरंगजेब के साथ उसके कुचक्रों में शामिल होकर ही उसे मान-सम्मान मिल सकता है। यही कारण है कि वह हर जगह साजिश रचती हुई दिखाई देती है। लेखक काली रात में उसके अंतर्मन की साजिशों को दिखाया है। वह लिखते हैं- "रोशन आरा तन्हाई में गौर करने लगी- मुअज्जम अपना गुट तैयार कर रहा है। वह उसके दबदबे में नहीं रह सकेगा। शाहजादा मुहम्मद सुलतान बंगाल में है। बहुत दूर है। आलम और अकबर छोटे हैं। आलम औरंगजेब के साथ है। .. अकबर के नाम पर दूसरा गुट बन सकता है। अकबर कब्जे में रह सकता है। मुगल हुकूमत उसके मुताबिक चल सकती है! ... बस, यही तो तमन्ना रह गई है। और क्या है उसकी जिंदगी में! ... कभी-कभी छिपकर ऐश... गुनाह है... गुनाह नहीं है। ... मुगल शाहजादी की यही जिंदगी है! ... सरगोशियों के दरम्यान शबाब की प्यास को...!! जिंदगी की हवस तड़पती रही और उम्र का कारवां गुजरता रहा। ... वह अकबर के नाम पर गुट तैयार करेगी। मुगल सल्तनत की ताली उसकी उंगलियों में रहेगी। अचानक उसे ख्याल आया कि आगरा में अब्बा हुजूर भी जोर आजमाईश कर सकते हैं। मिर्जा राजा मदद कर सकते हैं। यह सोचकर वह पसीने-पसीने हो गयी।" उत्तर मध्यकाल में जिस तरह दमन एवं आधिपत्य दिखता है, ऐसे में व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं स्व की आस्था का विकास करने वाली वृत्ति क्षीण दिखती है। लेखक ने इस अवस्थिति को दिखाने के साथ भारतीय जनता की जीवतता, सहिष्णुता एवं परिश्रम करने की विशेषताओं को उद्घासित किया है। यहाँ शासक बनावटी रूप में दिखता है और असमानता, अन्याय की आवाज़ बनकर रह जाता है। लेखक ने उसकी क्रूरता, तंगदिली एवं हठधर्मिता के बिंब तो उकेरे ही हैं साथ ही सूफी संतों, जनता, साहित्यकारों आदि की कारुणिकचिंतका को भी चिह्नित किया है। जहाँ किसी के लिए नफरत, विद्वेष की भावना नहीं, बल्कि हर किसी के लिए शांति-अमन का पैगाम है। समाज को उत्कृष्ट बनाने के लिए आवश्यक है कि समाज के सभी तंत्र सफल हों, कारगर हों। सभी में एकजुटता हो, समाज को आगे ले जाने की भावना हो। किन्तु अत्यंत खेदजनक स्थिति है कि यह समय हिन्दू जाति के पराभव का समय है।

विडम्बनापूर्ण समय में आचार्य जगन्नाथ एवं लवंगी का प्रेम एक आदर्श है जो सभी भारतीयों को दिशा देने वाला है। एक दासी पुत्री होकर भी लवंगी पत्नीव्रता स्वरूप को जिस तरह पेश करती है वह एक मिसाल है। वह किसी भी स्थिति में अपने पुत्र भवनाथ एवं पति का हाथ नहीं छोड़ती। पीड़ा एवं पराजय के क्षणों में जब भी आचार्य जगन्नाथ स्वयं को निरुपाय समझते हैं, लवंगी उनका साहस बनकर उभरती है। लवंगी के व्यक्तित्व में भारतीय नारी की स्नेह-भावना, समर्पण एवं कर्तव्य-चेतना एकाकार हो उठती है। लवंगी एवं आचार्य जगन्नाथ का प्रेम वायवीय नहीं है, वह जीवन में गहरे धँसा हुआ है। वे दोनों एक दूसरे के सहारे हैं, कथनी-करनी को सम रखते हुए दोनों ही मानवता की मिसाल हैं। लवंगी जहाँ भारतीय नारी का उदात्त रूप है, वहीं आचार्य जगन्नाथ भारतीय साहित्यकारों की जीवत प्रतिमा हैं जो श्लाघनीय है। आचार्य जगन्नाथ के व्यक्तित्व में जहाँ एक ओर आचारगत दृढ़ता है वहीं भारतीय ज्ञान-चेतना का अविरल प्रवाह भी। वही किसी भी स्थिति में हार नहीं मानते यही भारतीय आदर्श है। विधर्मियों के द्वारा हिन्दू मंदिरों के तोड़े जाने पर, आस्थाओं का उपहास उड़ाये जाने पर भी वह धर्मच्युत नहीं होते बल्कि साहस के साथ खड़े होते हैं। यही उनकी जीत है जिसे पढ़कर पाठक भीतर तक भर उठता है। शाहजादा दाराशिकोह को उन्होंने धर्म की शिक्षा दी, भारतीय ब्रह्म विद्या को उन्होंने अपने अन्तस् में धारण किया। वह भला कैसे कमजोर हो सकते थे, पूर्वजों की जीवतता उनका मार्गदर्शन कर रही थी। वह अन्दर से पराक्रमी और दृढ़ थे यह जगह-जगह उपन्यास में दिखता है। दाराशिकोह की मृत्यु के बाद सत्य को बचाने के लिए उन्हें यहाँ-वहाँ भटकना पड़ा किन्तु वह अधीर न हुए बल्कि सत्य की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहे। जब विधर्मी औरंगजेब सब कुछ विनष्ट कर रहा था। आचार्य जगन्नाथ की चिंता भारतीय साहित्य को बचाने की थी। वह स्वयं द्वारा लिखित पुस्तकों को बचाना चाहते थे ताकि भारत की सांस्कृतिक-चेतना बची रह सके। अपनी पत्नी लवंगी से वह कहते हैं- "चल सकता हूँ। गोदावरी तट की ओर जा सकता हूँ। वहाँ बादशाह की पहुँच नहीं है। इन बच्चों को... इन ग्रंथों को बचाना आवश्यक है। ... पिछले पाँच-छ सौ वर्षों में हजारों ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। ... नष्ट कर दिये गये हैं। ... साहित्य का विनाश सबसे बड़ी हानि है, लवंगी।"

इस दहशत से भरे हुस समाज में सब कुछ अप्रत्याशित सा था। लोगों को डराकर-दबाकर रखने की स्थिति सी हद तक चली गयी थी कि अब भारतीय समाज में विरोध एवं अपमान का बदला लेने की प्रवृत्ति उभरने लगी थी। अब हर आदमी चाहता था कि इस दशशत से भरे हुए दौर का समापन हो ताकि आदमी अच्छे से अपना जीवन जी सके। हर तरफ हाहाकार का माहौल दिखाई दे रहा था। जब सरदारों का आतंक अपनी चरम पर पहुँच गया तो जनता उससे मुक्ति के उपाय खोजने लगी। लोगों के द्वारा इस अत्याचार से मुक्त होने के लिए कियी जाने वाले प्रयासों को इसी रूप में देखना होगा। गोकुल के द्वारा अपने गाँव के युवकों को सैनिक तंत्र में ढालने की प्रक्रिया को भी इसी में रूप में देखा जा सकता है। गोकुल के मानस का निरुपण करते हुए लेखक कहते हैं कि- "गोकुल ने सोचा कि अपने गाँव के सारे नौजवान रक्षा में खड़े हो जायेंगे। अब अपने गाँव-तिलपट को गढ़ बना देना है। सभी नौजवानों के हाथों में भाले देकर खड़ा कर देना है। ... पर कैसे? मुगल सल्तनत से टकराना खेल नहीं है। ... यह फौजदार तो तलवार से ही खूनी खेल खेलता है।" लेखक ने लोक में व्याप्त निराशा एवं हताशा को भी दिखाया है। प्रस्तुत कृति में वह दिखाते हैं कि जनता हर तरह के अनाचार से तंग आ चुकी थी और वह सार्थक समाधान चाह रही थी। इसलिए इस अराजक व्यवस्था को बदलने एवं शांति के सही संधान

लिए सन्नद्ध हो गयी थी। मुर्शिद कुली खां के आदमियों की आगजनी किसी छिपी नहीं थी। वे फसलों को बर्बाद करने के साथ, गरीब लोगों की झोपड़ियों में अकारण आग भी लगा रहे थे। इस कारण हर तरफ चिंता एवं पराजय का भाव दिखाई दे रहा था। जनता पूर्ण समाधान चाह रही थी। इसलिए लोगों को गोकुल के द्वारा उठाये जा रहे कदम ठीक जान पड़ रहे थे। लेखक ने सी और इशारा किया है। वह लिखते हैं- “कुछ ने हाथ उठा दिये। कुछ सोचने लगे कि मुर्शिद कुली खां का जुल्म बढ़ता जा रहा है। कहीं उसके सिपाही हरे-भरे खेतों को रौंद देते हैं। कहीं उनकी गायों को मार कर खुराक बना लेते हैं। कभी घर की बेटी-पतोह पर कुदृष्टि डालते हैं। दर से आती डोली को गायब कर देते हैं। जब-तब बारातियों से मुठभेड़ ही जाती है। गांवों में हाहाकार फैल जाता है। अब मुकाबला करना होगा।... लेकिन दिल्ली की फौज से कब तक मुकाबला ही सकेगा? गांव के जाट किसान कैसे मुकाबला करें?... पर अमीचंद की रक्षा होनी चाहिए।”⁶

युवक अमीचंद आभूषण के व्यापारी का बेटा था किन्तु स्वाभाविक रूप से वहा कलाकार था। जिसे बांसुरी बजाना पसंद था। वह प्राकृतिक रूप से अमन और शान्ति को पसंद करता था किन्तु दहशत से भरे हुए माहौल में उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। चूंकि वह सूफी संत सरमद साहब के निकट था इसलिए औरंगजेब उसे भी नस्ते नाबूत कर देना चाहता था। अमीचंद अपनी बांसुरी लेकर यहाँ-वहाँ फिरता है, वह चाहकरभी शान्ति नहीं प्राप्त का पाता, क्योंकि दहशत भरे माहौल में कलाकारों एवं कलावंतों के लिए जगह नहीं थी। जो दाराशिकोह के निकट थे सभी को औरंगजेब अपना विरोधी समझता है। इसलिए हर उस आवाज को वह दबाना चाहता है। इस तरह तत्कालीन शासन अत्यंत कठिन हो गया था। लेखक लिखते हैं कि- “अमीचंद सोच रहा था कि उसके कारण रक्त बहेगा- यह उचित नहीं है। वह यहाँ से दूर चला जायेगा।... बुंदेलखंड की पहाड़ियों की तरफ चल देगा। उधर कोई संत आ गए हैं। उनके साथ भटकता रहेगा। बांसुरी बजायेगा। बांसुरी बजाना नहीं छोड़ेगा। यदि छोड़ देगा तो सरमद साहब की रूह को शांति कैसे मिलेगी? बांसुरी का स्वर विद्रोह का स्वर तो नहीं है। कान्हा ने अपनी वंशी से सबको प्रेम का संदेश दिया था।... उसने भी सूफी दरवेश मुहम्मद सईद सरमद का शिष्य बनकर उनके प्रेम के संदेश को बांसुरी से गुंजाया है। वह कान्हा की बांसुरी को... सरमद साहब की बांसुरी को छोड़ नहीं सकता। वह खुद इस सल्तनत से दूर चला जायेगा।”⁷ प्रस्तुत कृति में लेखक ने सामाजिक-राजनीतिक जड़ता को कई पात्रों के जरिए दिखाया है, यही नहीं उन्होंने पशु-पक्षियों के माध्यम से मानवीयस्वतंत्रता को दिखाया है। लेखक ने आजाद पक्षियों और आम आदमी के सुख-दुःख आदि की तुलना की है। इस तुलना में सापेक्षिक रूप से स्वतंत्रता एवं परतंत्रता दोनों ही दिखाई पड़ते हैं। लेखक का मानना है कि प्रकृति में सुन्दरता तो है किन्तु शिकारी उस आह्लादकारी सुन्दरता को भी छीन लेना चाहते हैं। भवनाथ, लवंगी एवं आचार्य जगन्नाथ द्वारा मोरों को देखकर उपजी सौन्दर्य भावना का चित्रण करते हुए लेखक ने सुंदर ढंग से उसे बानी देनी चाही है। वह लिखते हैं कि- “भवनाथ मन ही मन प्रसन्न हुआ वह सड़क के पार पेड़ों के झुरमुट में विचरण करते मोरों को देखने लगा। पंडितराज भी मोरों को देख रहे थे।

लवंगी ने भी उन मोरों को देखा। दो-तीन मोरों ने अपने पंख फैला दिये थे। पंख का सौंदर्य सबको भा गया। पंडित राज गुनगुनाने लगे... लवंगी ने महसूस किया कि ये मोर तो हुकूमत की दहशत से दूर हैं। ये आजाद हैं। लेकिन ये पंखी आजाद कहाँ हैं? शिकारी इनका भी शिकार करते हैं। यह शाह-सरदार और राजा सामंत इन्हें हजम कर जाते हैं।... पंखों की सुंदरता और सुंदरता की शायरी सब खत्म! ... आदमी कितना खौफनाक है! कितना खुदगर्ज है!!” औरंगजेब जिस तरह सत्ता पर काबिज होकर राज्य का प्रसार चाहता था, जिस तरह सियासी दाव-पेंच के माध्यम से भारतीय भारतीय विचारों को मिटाना चाहता था। उसकी मनःस्थिति को लेखक रेखांकित करते हैं। उसके भीतर जो विचारों का आलोड़न चल रहा था, उसे व्यक्त करते हुए उसके स्वगत कथन को चित्रित करते हुए वह कहते हैं- “यह बेगैरत और बेपरवाह सरदार मुगल सल्तनत के पाये हैं।

इन्हीं के भरोसे हिन्दोस्तान पर हुकूमत करनी है !! अंदर और बाहर के दृशनों से मुकाबला इन्हीं के जरिये होगा !!! मगर मुगलों ने इस मुल्क पर शान से हुकूमत की है- अपने वतन से आकर। साथ ही ऐयासी भी की है।... लेकिन मैं सिर्फ शानदार हुकूमत का ख्वाब देख रहा हूँ। हिमाला से समंदर तक मुगल सल्तनत का नाम तवारीख में दर्ज कर देना चाहता हूँ। इसलिए मैं एक हाथ में दोनों ईमान और दूसरे हाथ में शमशीर की ताकत लेकर हर दुश्मन को पस्त कर देना चाहता हूँ। काफिरों के मुल्क दारुल हर्ब को दारुल इस्लाम में बदल देना चाहता हूँ। चूनांचे इन मुगल सरदारों को सही राह पर लाना है। इन्हें दोनों ईमान की राह पर चलना है। “उपर्युक्त कथन में लेखक ने औरंगजेब की महत्वाकांक्षा को दिखाया है। शानो-शौकत, वर्चस्व आदि को औरंगजेब के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है। इस तरह प्रस्तुत कृति के द्वारा लेखक ने भारत की मध्यकालीन सत्ता, राजनीति एवं सामाजिक अवधारणा को दर्शाना चाहा है जिसे पढ़कर न केवल तत्कालीन शासन-प्रशासन की झलक मिलती है बल्कि दाराशिकोह की नेक-दिली की छाया भी दिखाई देती है। दारा के व्यक्तित्व के विस्तार के अलावा सूफी-संतों, दरवेशों एवं अमनपसंद लोगों की सामाजिक लड़ाई को भी कृति भिन्न ढंग से प्रस्तुत करती है।

सामाजिक-राजनीतिक बोध के साथ कृति की भाषा सरल-शब्दों में मध्यकालीन राजनीति को उद्भासित करती है। प्रस्तुत कृति में भाषा के स्तर पर दुरुहता या अरबी-फारसी शब्दों का घटाटोप नहीं है, न ही दरबारी शिष्टाचार या जीवन-बोध से फिसलन है। तथ्यों की संतुलित व्याख्या है, जिससे रचना बड़ी बनती है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखना कठिन चुनौती है। जब भी साहित्यिक उपन्यास लिखे जाते हैं, कई बार भावनाओं या बुद्धि के क्षेत्र में भटकते हुए जान पड़ते हैं, यह उपन्यास भटकता कहीं नहीं। लेखक ने तत्कालीन जीवन-बोध को समझा है, उसके बाद लिखा है अतएव बौद्धिक फिसलन की बजाय इसे ऐतिहासिक दस्तावेज कहें तो अच्छा रहेगा। इससे पाठकों को भारतीय इतिहास को साहित्य की दृष्टि से पढ़ने की दृष्टि भी मिलेगी। इतिहास को पढ़ना भी सबके बस की बात नहीं होती। इतिहास तथ्यों की भरमार है जो नीरस भी है और सरस भी। किन्तु जब लेखक इतिहास का साहित्य में पुनर्चाव करते हैं तो रचना बड़ी हो जाती है। यह रचना इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि लेखक ने पाठक को पढ़ने के लिए साहित्यिक इतिहास दिया है जो पाठक के मन को गुदगुदायेगा भी और सचेत करते हुए उसे सामाजिक भूमिका के प्रति आशान्वित करने का काम भी करेगा। जब पाठक अपने देश, संस्कृति एवं सभ्यता को जानते-समझते हुए आगे बढ़ता है, जब उसकी चिंत का सही मायनों में भाव होता है तो रचना बड़ी हो जाती है। इस अर्थ में यह रचना बड़ी है और व्यापक भी....

संदर्भ :-

1. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-07
2. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-54
3. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या-89
4. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-79
5. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-104
6. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-105
7. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-108
8. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-107-108
9. शत्रुघ्न प्रसाद, ‘शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016 पृष्ठ संख्या-121